नईदुनिया

संपादकीय

रिहायशी इलाकों में अवैध दुकानें, शोरूम और अस्पताल

रिहायशी इलाकों में दुकानें, शोरूम और अस्पताल खोलकर आवासीय क्षेत्रों में नगरीय निकाय के निर्देशों की धज्जियां उड़ाई जा रही हैं। यह दृश्य अब किसी एक गली-मोहल्ले तक सीमित नहीं रहा, बल्कि शहर के हर वार्ड, हर कॉलोनी और हर आवासीय सेक्टर में दिखाई देने लगा है। मकानों की पहली मंजिल पर शोरूम सज गए हैं, बेसमेंट में अस्पताल खुल गए हैं और गलियों की चौड़ाई से अधिक जगह पार्किंग के नाम पर घेर ली गई है। देखने वाली बात यह है कि नगर निगम और स्थानीय प्रशासन की नाक के नीचे यह अवैध निर्माण लगातार पनप रहा है और आम नागरिक की नींद व चैन दोनों छीन रहा है।

आवासीय क्षेत्र का मूल उद्देश्य शांति, सुरक्षा और स्वस्थ जीवन होता है। नगर पालिका अधिनियम और मास्टर प्लान में स्पष्ट लिखा है कि रिहायशी जोन में व्यावसायिक गतिविधियां केवल सीमित शर्तों पर ही संचालित हो सकती हैं। परंतु आज स्थिति यह है कि बड़े शोरूम और निजी अस्पताल बिना परिवर्तन उपयोग की अनुमति लिए मकानों में संचालित हो रहे हैं। नक्शा आवासीय का और उपयोग व्यावसायिक का - यह दोहरा चरित्र न केवल कानून का उल्लंघन है, बल्कि अग्नि सुरक्षा और भवन सुरक्षा मानकों के साथ भी खिलवाड़ है। तंग गलियों में एंबुलेंस नहीं घुस पाती, शोरूम के ग्राहकों की गाड़ियां सड़क जाम कर देती हैं और रातभर जनरेटर की आवाज से बुजुर्ग तथा बच्चे परेशान रहते हैं।

सबसे बड़ा सवाल यह है कि यह सब नगर निगम की नाक के नीचे कैसे हो रहा है। भवन निर्माण की अनुमति देने वाली शाखा ने नक्शा पास किया होगा, पट्टा जारी हुआ होगा, बिजली-पानी के कनेक्शन मिले होंगे और हर महीने संपत्ति कर भी वसूला जा रहा होगा। यदि बिना अनुमति के व्यावसायिक उपयोग हो रहा है तो निगम के प्रवर्तन दल कहां हैं? यदि अनुमति लेकर भी नियम तोड़े जा रहे हैं तो जांच कौन करेगा? जमीनी हकीकत बताती है कि कई बार फाइलों में आपत्तियां दर्ज कर दी जाती हैं, लेकिन मैदान में कोई कार्रवाई नहीं होती। कुछ दिन बाद वही अवैध निर्माण फिर से पनप जाता है और लोग मान लेते हैं कि प्रशासन ने मौन स्वीकृति दे दी है। स्थानीय प्रशासन की मिलीभगत का संदेह इसलिए गहराता है क्योंकि अवैध निर्माण को तोड़ने के आदेश कागजों पर तो आते हैं, पर अमल में नहीं पहुंचते। बड़े शोरूम और अस्पतालों के मालिक प्रभावशाली होते हैं। उनके पास कानूनी पेच लड़ाने वाले वकील होते हैं और छोटे कर्मचारी कार्रवाई करने से पहले कई बार सोचते हैं। परिणाम यह होता है कि नियम तोड़ने वाला मजबूत हो जाता है और नियम मानने वाला स्वयं को ठगा हुआ महसूस करता है। जब एक मकान में अस्पताल खुल जाता है तो बगल वाला मकान भी दुकान बन जाता है। इस प्रकार अवैधता की लहर पूरे मोहल्ले में फैल जाती है।

इस अवैध व्यावसायीकरण का सबसे अधिक नुकसान आम रिहायशी नागरिकों को उठाना पड़ता है। पार्किंग की जगह खत्म हो जाती है, सीवर लाइन और पानी की पाइपलाइन पर अतिरिक्त दबाव पड़ता है, कचरे और मेडिकल वेस्ट का निपटान नियमों के अनुसार नहीं होता तथा आपदा की स्थिति में बचाव के रास्ते अवरुद्ध हो जाते हैं। इसलिए समय रहते नियमों को लागू करना और रिहायशी क्षेत्रों की मर्यादा बनाए रखना आवश्यक है।

आजकल

न्याय की अदालत में लापरवाही का जिम्मेदार कौन?

न्यायालय में न्यायाधीश के सामने एक ही गवाह बार-बार पेश होता है, परंतु यदि न्यायाधीश, अधिवक्ता और पुलिस तीनों ही ध्यान नहीं दें तो मुकदमे का भविष्य अंधकार में चला जाता है। सवाल उठता है कि आखिर दोषी कौन है? यदि पुलिस झूठे गवाह खड़े करती है तो न्याय दिलाएगा कौन? यदि जुर्म से पहले ही गवाह तैयार कर लिए जाएं तो अपराधियों के खिलाफ कार्रवाई कैसे होगी? बेगुनाहों को झूठे मामलों में फंसाकर समझौते के नाम पर वसूली का धंधा कैसे रुकेगा? यह व्यवस्था की सबसे बड़ी चुनौती है।

पुलिस की भूमिका जांच एजेंसी की होती है। उसका काम तथ्य जुटाना है, गवाह तैयार करना नहीं। यदि विवेचना में दबाव या लालच देकर झूठे गवाह खड़े किए जाते हैं तो एफआईआर से पहले ही न्याय की हत्या हो जाती है। ऐसी स्थिति में वास्तविक अपराधी बच जाता है और निर्दोष व्यक्ति जेल की हवा खाता है। पुलिस पर निगरानी रखने के लिए मजिस्ट्रेट, रिमांड जांच और सीसीटीएनएस जैसी व्यवस्थाएं हैं, परंतु जब तक निचले स्तर पर जवाबदेही तय नहीं होगी, तब तक झूठे गवाह बनाने का खेल बंद नहीं होगा।

अधिवक्ता का कर्तव्य अदालत को सच से रूबरू कराना है, न कि झूठ को मजबूत करना। यदि कोई अधिवक्ता जानबूझकर झूठे गवाह को तैयार करता है और जिरह के दौरान विरोधाभास छिपाता है तो वह अपने पेशे के साथ विश्वासघात करता है। न्यायाधीश अदालत का कर्णधार होता है। यदि एक ही गवाह बार-बार पेश हो रहा है और उसके बयान में विरोधाभास है, फिर भी अदालत ध्यान नहीं देती तो यह गंभीर चूक है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम और सीआरपीसी में झूठी गवाही पर कठोर दंड का प्रावधान है।

दोष किसी एक का नहीं, बल्कि पूरे तंत्र की लापरवाही का है। पुलिस यदि गवाह बनाती है, अधिवक्ता उसे तराशता है और न्यायालय सतर्क नहीं रहता, तो न्याय व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न लगना स्वाभाविक है। गवाह की सच्चाई की रक्षा, निष्पक्ष जांच और ईमानदार पैरवी ही न्याय व्यवस्था की विश्वसनीयता बनाए रख सकती है।

जाति की गिनती, लोकतंत्र की परीक्षा

आंकड़ों से न्याय मिलेगा या समाज और बंटेगा ?

अपूर्व तिवारी

भारत में जनगणना को अक्सर केवल आबादी गिनने की सरकारी कवायद समझ लिया जाता है, जबकि वास्तविकता यह है कि यही प्रक्रिया देश की विकास योजनाओं, संसाधनों के वितरण और राजनीतिक प्रतिनिधित्व की आधारशिला तय करती है। लेकिन जब जनगणना के साथ 'जाति' का प्रश्न जुड़ता है तो बहस केवल आंकड़ों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि सामाजिक न्याय, आरक्षण, राजनीति और राष्ट्रीय एकता जैसे प्रश्नों को भी केंद्र में ले आती है। आज देश एक ऐसे मोड़ पर खड़ा है जहां जातीय गणना को लेकर उत्साह भी है और आशंकाएं भी।

भारत में जातिगत गणना कोई नई अवधारणा नहीं है। ब्रिटिश शासन के दौरान 1872 से शुरू हुई जनगणनाओं में जाति का विस्तृत विवरण दर्ज किया जाता था। 1931 की जनगणना आखिरी ऐसी गणना थी जिसमें सभी जातियों का व्यापक आंकड़ा एकत्र किया गया। स्वतंत्रता के बाद देश के नीति-निर्माताओं ने जाति-आधारित पहचान को धीरे-धीरे कमजोर करने की सोच के साथ सामान्य जनगणना से जाति संबंधी विवरण हटा दिया। केवल अनुसूचित जाति (एससी) और अनुसूचित जनजाति (एसटी) के आंकड़े दर्ज किए जाते रहे। परिणाम यह हुआ कि आज भी देश में अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) की वास्तविक जनसंख्या का कोई आधिकारिक राष्ट्रीय आंकड़ा उपलब्ध नहीं है।

वर्ष 2011 में केंद्र सरकार ने एसईसीसी (सामाजिक-आर्थिक एवं जाति जनगणना) कराई। इस अभ्यास में लगभग 46 लाख जातियों, उपजातियों और उनके विभिन्न नाम दर्ज हुए। लेकिन वर्गीकरण की जटिलताओं और आंकड़ों की शुद्धता पर उठे सवालों के कारण ये आंकड़े कभी पूरी तरह सार्वजनिक नहीं किए गए। यही वह बिंदु था जहां से जातीय गणना की बहस और तेज हुई। हाल के वर्षों में कई राज्यों ने अपने स्तर पर पहल की। बिहार ने 2023 में जातीय सर्वेक्षण के परिणाम जारी किए। इसके अनुसार अत्यंत पिछड़ा वर्ग 36.01 प्रतिशत और पिछड़ा वर्ग 27.13 प्रतिशत है। यानी दोनों को मिलाकर राज्य की लगभग 63 प्रतिशत आबादी इन वर्गों में आती है। सामान्य वर्ग की हिस्सेदारी लगभग 15.5 प्रतिशत बताई गई। इसके बाद तेलंगाना ने भी सर्वेक्षण कराया, जिसमें ओबीसी आबादी 46 प्रतिशत से अधिक और मुस्लिम आबादी लगभग 10 प्रतिशत बताई गई। इन आंकड़ों ने राष्ट्रीय स्तर पर जातीय गणना की मांग को नई ऊर्जा दी। इसी पृष्ठभूमि में केंद्र सरकार ने 2025 में आगामी राष्ट्रीय जनगणना में जातिगत गणना शामिल करने का निर्णय लिया। अधिसूचना जारी हो चुकी है और लगभग 11,718 करोड़ रुपये का बजट स्वीकृत किया गया है। 2027 में होने वाली यह जनगणना स्वतंत्र भारत की पहली ऐसी राष्ट्रीय गणना होगी जिसमें सभी समुदायों की जातिगत जानकारी दर्ज की जाएगी। यह केवल सांख्यिकीय घटना नहीं, बल्कि आने वाले दशकों की राजनीति और नीतियों को प्रभावित करने वाला कदम है।

जातीय गणना के समर्थकों का सबसे बड़ा तर्क है कि बिना सटीक आंकड़ों के सामाजिक न्याय संभव नहीं है। देश में आरक्षण, छात्रवृत्ति, रोजगार, स्वास्थ्य और कल्याणकारी योजनाओं का बड़ा हिस्सा सामाजिक पिछड़ेपन के आधार पर संचालित होता है। यदि सरकार के पास यह जानकारी ही नहीं है कि किस वर्ग की वास्तविक आबादी कितनी है, तो योजनाओं का प्रभावी और न्यायपूर्ण वितरण कैसे होगा? मंडल आयोग ने भी 1931 के आंकड़ों के आधार पर ही ओबीसी आबादी का अनुमान लगाया था। लगभग एक सदी पुराने आंकड़ों पर आज की नीतियां चलाना किसी भी आधुनिक लोकतंत्र के लिए आदर्श स्थिति नहीं कही जा सकती। इसके साथ ही एक और महत्वपूर्ण प्रश्न जुड़ा है। सुप्रीम कोर्ट ने 1992 के इंदिरा साहनी मामले में कुल आरक्षण की सीमा 50 प्रतिशत निर्धारित की थी। बाद में ईडब्ल्यूएस (आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग) के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण लागू होने से यह सीमा व्यवहारिक रूप से बदल चुकी है। यदि जातीय गणना में यह सामने आता है कि कई राज्यों में पिछड़े वर्गों की आबादी वर्तमान आरक्षण व्यवस्था से कहीं अधिक है, तो आरक्षण के ढांचे पर नए सिरे से बहस होना स्वाभाविक है।

ओबीसी के भीतर उप-वर्गीकरण की मांग भी इसी कारण जोर पकड़ रही है। यह धारणा लंबे समय से रही है कि कुछ प्रभावशाली उपजातियां आरक्षण का अपेक्षाकृत बड़ा लाभ प्राप्त कर रही हैं, जबकि अनेक छोटे और कमजोर समूह अपेक्षित लाभ से वंचित हैं। लेकिन तस्वीर का दूसरा पक्ष भी उतना ही महत्वपूर्ण है। आलोचकों की चिंता है कि जातीय गणना समाज को आंकड़ों के आधार पर और अधिक खांचों में बांट सकती है। पिछले तीन दशकों में भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका कम होने के बजाय कई क्षेत्रों में और मजबूत हुई है। ऐसे में नई गणना राजनीतिक दलों के लिए नए वोट बैंक की गणित बन सकती है। आशंका यह भी है कि विकास, शिक्षा, रोजगार और सुशासन जैसे मुद्दों के बजाय चुनावी विमर्श फिर से जातीय पहचान के इर्द-गिर्द सिमट जाए। व्यावहारिक चुनौतियां भी कम नहीं हैं। भारत में हजारों जातियां और लाखों उपजातियां हैं, जिनके नाम क्षेत्र, भाषा और सामाजिक परंपराओं के अनुसार बदलते रहते हैं। 2011 की एसईसीसी में 46 लाख से अधिक नाम दर्ज होना इसी जटिलता का प्रमाण है। ऐसे में आंकड़ों का वर्गीकरण, सत्यापन और विश्लेषण आसान नहीं होगा। बिहार और तेलंगाना के सर्वेक्षणों को लेकर भी पद्धति और पारदर्शिता संबंधी सवाल उठे थे। तेलंगाना में सर्वेक्षण से कुछ आबादी के छूट जाने को लेकर भी विपक्ष ने प्रश्न खड़े किए। यदि आंकड़ों की विश्वसनीयता पर ही विवाद खड़ा हो जाए तो पूरी प्रक्रिया का उद्देश्य कमजोर पड़ सकता है। फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि किसी समस्या को मापे बिना उसका समाधान नहीं किया जा सकता। यदि देश सामाजिक न्याय की दिशा में गंभीर है तो उसके पास विश्वसनीय और अद्यतन आंकड़े होना आवश्यक है। लेकिन उतना ही जरूरी यह भी है कि इन आंकड़ों का उपयोग समाज को बांटने के बजाय अवसरों की असमानता दूर करने के लिए किया जाए। जातीय गणना का लक्ष्य केवल यह जानना नहीं होना चाहिए कि कौन कितनी संख्या में है, बल्कि यह भी होना चाहिए कि कौन कितना पीछे है और उसे आगे लाने के लिए क्या किया जाना चाहिए। इसलिए असली सवाल यह नहीं है कि जातीय गणना होनी चाहिए या नहीं। असली सवाल यह है कि उसके आंकड़ों का उपयोग किस उद्देश्य से किया जाएगा। यदि इनका इस्तेमाल शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और अवसरों की असमानताओं को दूर करने के लिए किया जाता है, तो यह सामाजिक न्याय की दिशा में ऐतिहासिक कदम साबित हो सकता है। लेकिन यदि आंकड़े केवल राजनीतिक गोलबंदी और चुनावी लाभ का माध्यम बन गए, तो इससे समाज में नई खाइयां भी पैदा हो सकती हैं। भारत जैसे विविधतापूर्ण लोकतंत्र में आंकड़ों से आंखें मूंदना भी उचित नहीं और केवल आंकड़ों को राजनीति का हथियार बना देना भी खतरनाक है। 2027 की जातीय गणना देश को एक दुर्लभ अवसर दे रही है - वास्तविक सामाजिक तस्वीर को समझने का। अब यह सरकारों, राजनीतिक दलों और समाज पर निर्भर करेगा कि वे इन आंकड़ों को विभाजन का आधार बनाते हैं या न्यायपूर्ण विकास का। आखिरकार, जनगणना का उद्देश्य लोगों को गिनना नहीं, बल्कि उनकी जरूरतों को समझना होना चाहिए। यदि यह संतुलन कायम रहा तो जातीय गणना केवल राजनीतिक मुद्दा नहीं, बल्कि अधिक समावेशी और न्यायपूर्ण भारत की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम साबित हो सकती है।

थरूर के बयान के मायने : सहमति नहीं, मोदी विजन की स्वीकारोक्ति

कांग्रेस सांसद शशि थरूर ने एक बार फिर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की सार्वजनिक प्रशंसा की है। उन्होंने कहा कि चाहे आप सहमत हों या न हों, उनका एक विजन है। प्रधानमंत्री मोदी में जोश और ऊर्जा है। वे जबरदस्त वक्ता हैं और हिंदी में इस देश ने जितने भी बेहतरीन वक्ता देखे हैं, उनमें से एक हैं। वे खास तौर पर उन लोगों तक अपनी बात पहुंचाते हैं जो यह भाषा बोलते हैं। राष्ट्रीय मंच पर उनकी मौजूदगी बेहद प्रभावशाली है और इसमें कोई संदेह नहीं कि वे भारतीय जीवन, समाज और राजनीति के अनेक पहलुओं पर अपनी छाप छोड़ने में सफल रहे हैं। यह बयान विपक्षी राजनीति की भाषा में असामान्य है, क्योंकि इसमें आलोचना नहीं, विश्लेषण है; विरोध नहीं, बल्कि स्वीकारोक्ति है।

शशि थरूर कोई सामान्य सांसद नहीं हैं। वे लेखक, पूर्व केंद्रीय मंत्री और संयुक्त राष्ट्र के अनुभवी कूटनीतिज्ञ रहे हैं। उनकी शब्दावली और तर्क शैली की अलग पहचान है। जब वे मोदी के विजन और वक्तृत्व की चर्चा करते हैं तो यह केवल प्रशंसा नहीं, बल्कि एक राजनीतिक अवलोकन प्रतीत होता है। यह सहमति नहीं, बल्कि क्षमता की स्वीकारोक्ति है और यही इस बयान को महत्वपूर्ण बनाता है।

इसका पहला अर्थ राजनीतिक संदेश से जुड़ा है। कांग्रेस और व्यापक विपक्ष में मोदी की आलोचना एक स्थापित राजनीतिक भाषा बन चुकी है। नीतियों की आलोचना लोकतंत्र का स्वाभाविक हिस्सा है, लेकिन किसी प्रतिद्वंद्वी नेता के गुणों को सार्वजनिक रूप से स्वीकार करना विरल है। थरूर का यह बयान संकेत देता है कि विपक्ष केवल नकार की राजनीति से आगे नहीं बढ़ सकता। उसे अपने प्रतिद्वंद्वी की ताकत को भी स्वीकार करना होगा। जब आप मानते हैं कि सामने वाले के पास स्पष्ट विजन है और वह जनता तक प्रभावी ढंग से पहुंचता है, तब आपकी बात भी अधिक विश्वसनीय लगती है। थरूर ने शायद यही संदेश दिया है कि चुनाव जनता की भावनाओं से जीते जाते हैं और भावनाओं तक वही पहुंचता है जो प्रभावी संवाद कर सके। इस बयान का दूसरा पक्ष संवाद शैली और जनसंचार से जुड़ा है। थरूर ने मोदी को हिंदी के श्रेष्ठ वक्ताओं में गिना। यह टिप्पणी भाषा और संप्रेषण की शक्ति को रेखांकित करती है। भारतीय राजनीति में अंग्रेजी विद्वता सम्मान दिला सकती है, लेकिन जनाधार हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से बनता है। मोदी की भाषा सरल, सीधी और आमजन के अनुभवों से जुड़ी होती है। 'चायवाला' से लेकर 'मन की बात' तक उन्होंने ऐसी संवाद शैली विकसित की है जो टीवी स्टूडियो से लेकर गांव की चौपाल तक समान प्रभाव छोड़ती है। थरूर का संकेत स्पष्ट है कि विजन तभी सफल होता है जब वह प्रभावी संप्रेषण के साथ जनता तक पहुंचे।

इस बयान का तीसरा पहलू वैचारिक संघर्ष से जुड़ा है। थरूर ने कहा कि चाहे आप उस विजन से सहमत हों या नहीं। यह वाक्य लोकतांत्रिक परिपक्वता का प्रतीक है। राजनीति में असहमति स्वाभाविक है, लेकिन असहमति के लिए पहले प्रतिद्वंद्वी की वास्तविक स्थिति को समझना आवश्यक है। लोकतांत्रिक बहस तभी सार्थक होती है जब आप सामने वाले के तर्क को कमजोर करके नहीं, बल्कि उसकी पूरी ताकत के साथ उसका जवाब दें। थरूर ने कांग्रेस के सामने यह चुनौती रखी है कि यदि उसे वैकल्पिक राजनीति करनी है तो उसे भी उतना ही स्पष्ट, ऊर्जावान और संवादशील विजन प्रस्तुत करना होगा।

यह बयान कांग्रेस की आंतरिक रणनीति पर भी प्रश्न उठाता है। थरूर लंबे समय से पार्टी की संवाद शैली, युवाओं तक पहुंच और मीडिया नैरेटिव को लेकर अपनी राय रखते आए हैं। मोदी की प्रशंसा के माध्यम से उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से अपनी पार्टी को संदेश दिया है कि केवल आलोचना के आधार पर चुनाव नहीं जीते जा सकते। जनता के सामने सकारात्मक एजेंडा और स्पष्ट भविष्य दृष्टि रखना भी आवश्यक है। जिस प्रकार मोदी ने किसान से लेकर स्टार्टअप तक विभिन्न वर्गों को अपने नैरेटिव का हिस्सा बनाया, उसी तरह विपक्ष को भी अपनी भाषा और प्रस्तुति पर पुनर्विचार करना होगा। लोकतंत्र की परिपक्वता भी इस बयान का महत्वपूर्ण पहलू है। भारतीय राजनीति में अक्सर समर्थक अंधसमर्थन और विरोधी अंधविरोध की स्थिति में पहुंच जाते हैं। बीच का संतुलित दृष्टिकोण कम दिखाई देता है। थरूर ने उसी संतुलन की कोशिश की है। उन्होंने यह संदेश दिया कि आलोचना तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए और विरोध ईमानदारी के साथ होना चाहिए। किसी प्रतिद्वंद्वी की ताकत स्वीकार करना लोकतंत्र को कमजोर नहीं, बल्कि मजबूत बनाता है।

आलोचक यह कह सकते हैं कि थरूर अपनी पार्टी की लाइन से अलग चल रहे हैं या अपनी राजनीतिक भूमिका तलाश रहे हैं। यह संभावना राजनीति में हमेशा रहती है, लेकिन उनके बयान को देखें तो उसमें व्यक्तिपूजा से अधिक विश्लेषण दिखाई देता है। उन्होंने मोदी की नीतियों का समर्थन नहीं किया, बल्कि उनके विजन और संवाद क्षमता को स्वीकार किया। यह अंतर समझना आवश्यक है। किसी की शैली की सराहना करते हुए भी उसकी नीतियों से असहमति रखी जा सकती है और यही लोकतांत्रिक परिपक्वता का मूल है। दरअसल, थरूर का यह बयान कांग्रेस और व्यापक विपक्ष के लिए एक संदेश है कि राजनीति केवल विरोध से नहीं चलती। स्पष्ट विजन, प्रभावी संवाद और जनता की भाषा में अपनी बात रखने की क्षमता ही भविष्य की सफलता का आधार बन सकती है। मोदी की प्रशंसा करके थरूर ने उन्हें मजबूत नहीं किया, बल्कि अपनी पार्टी को चुनौती दी है कि यदि सत्ता का विकल्प बनना है तो केवल नकार नहीं, बल्कि एक विश्वसनीय सपना और स्पष्ट दिशा भी प्रस्तुत करनी होगी। राजनीति में विजन की स्वीकारोक्ति ही अगली जीत की पहली सीढ़ी होती है और शायद थरूर उसी सीढ़ी की ओर संकेत कर रहे हैं।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

84 महादेव दर्शन यात्रा

चौरासी महादेव के 36 वें महादेव

'मार्कण्डेश्वर महादेव: संतान सुख और दीर्घायु का चिरंतन आस्था केंद्र'

डॉ. नवीन आनंद जोशी

धर्मनगरी उज्जैन के पवित्र महाकाल वन क्षेत्र में, जहां काल स्वयं शिव की शरण में मौन है, वहां स्थित मार्कण्डेश्वर महादेव श्रद्धालुओं की अनंत आस्था का केंद्र हैं। पत्तनेश्वर महादेव के पूर्व दिशा में अवस्थित यह प्राचीन शिवलिंग सदियों से संतान प्राप्ति और दीर्घायु के आशीर्वाद का प्रतीक माना जाता रहा है। काल के प्रवाह में अनेक परंपराएं बदल गईं, किंतु इस तीर्थ की महिमा आज भी उतनी ही अक्षुण्ण है जितनी पुराणकाल में थी। मान्यता है कि सच्ची श्रद्धा और अटूट विश्वास के साथ यहां पूजन करने वाले भक्तों की मनोकामनाएं अवश्य पूर्ण होती हैं।

मार्कण्डेय ऋषि से जुड़ी है पौराणिक कथा : पुराणों के पृष्ठों में अंकित कथा के अनुसार, प्राचीन काल में मार्कण्ड नाम के एक विद्वान ब्राह्मण थे। वे वेदों के गहन ज्ञाता और महान तपस्वी थे, परंतु संतान न होने की पीड़ा उनके हृदय को निरंतर कुरेदती रहती थी। पुत्र प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा से प्रेरित होकर उन्होंने हिमालय की निर्जन कंदराओं में कठोर तपस्या का संकल्प लिया।

कहा जाता है कि उनकी तपस्या इतनी प्रबल और तीव्र थी कि उसकी ऊर्जा से समस्त सृष्टि का संतुलन प्रभावित होने लगा। तब करुणामयी माता पार्वती ने भगवान शिव से अपने इस अनन्य भक्त की मनोकामना पूर्ण करने का विनम्र निवेदन किया। भगवान शिव ने आकाशवाणी के माध्यम से मार्कण्ड ब्राह्मण को महाकाल वन में स्थित एक दिव्य शिवलिंग की आराधना करने का दिव्य निर्देश दिया।

आज्ञा शिरोधार्य करते हुए मार्कण्ड ब्राह्मण ने पूर्ण श्रद्धा और समर्पण से उस शिवलिंग का पूजन-अर्चन किया। उनकी अनन्य भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान शिव और माता पार्वती ने उन्हें पुत्र प्राप्ति का अमूल्य वरदान प्रदान किया। इसी वरदान के फलस्वरूप महामुनि मार्कण्डेय का जन्म हुआ, जिन्हें सप्त चिरंजीवियों में अमर स्थान प्राप्त है। मान्यता है कि उसी पवित्र क्षण से यह शिवलिंग 'मार्कण्डेश्वर महादेव' के नाम से विश्वविख्यात हुआ और तभी से यह स्थल आस्था का अक्षय स्रोत बन गया।

संतान और दीर्घायु की कामना से आते हैं श्रद्धालु : धार्मिक मान्यताओं के अनुसार मार्कण्डेश्वर महादेव का दर्शन और पूजन संतान सुख, बालकों के स्वास्थ्य तथा दीर्घायु के लिए विशेष फलदायी माना जाता है। यही कारण है कि सुदूर क्षेत्रों से दंपति यहां संतान प्राप्ति की कामना लेकर श्रद्धापूर्वक पहुंचते हैं।

समय के साथ यह परंपरा क्षीण होने के स्थान पर और अधिक प्रबल होती गई है-आज भी अनेक परिवार नवजात शिशु के जन्म के पश्चात सर्वप्रथम भगवान मार्कण्डेश्वर के दर्शन कर उनका आशीर्वाद प्राप्त करना अपना परम कर्तव्य मानते हैं।

बदलते समय में भी कायम है परंपरा : आधुनिक जीवनशैली की तीव्र गति और बदलते सामाजिक परिवेश के बीच, जहां पारंपरिक धार्मिक संस्कारों का स्वरूप निरंतर परिवर्तित हो रहा है, वहीं मार्कण्डेश्वर महादेव जैसे प्राचीन तीर्थस्थल आज की पीढ़ी को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। यह तीर्थ अतीत और वर्तमान के मध्य एक सेतु की भूमिका निभाता है-जहां पूर्वजों की आस्था और आज की पीढ़ी की श्रद्धा एक ही धागे में बंधी दिखाई देती है। स्थानीय श्रद्धालुओं का दृढ़ मत है कि जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धियों और पारिवारिक खुशियों को ईश्वर के प्रति कृतज्ञता के साथ मनाने की यह परंपरा भारतीय संस्कृति की अमूल्य पहचान रही है, जो युगों-युगों से चली आ रही है।

जन्मदिन पर मंदिर दर्शन की परंपरा : धार्मिक विद्वानों के अनुसार भारतीय परंपरा में जन्मदिन केवल भौतिक उत्सव नहीं, बल्कि ईश्वर के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करने का पवित्र अवसर माना जाता था। इस दिन बच्चों को विशेष रूप से मंदिर ले जाकर भगवान के दर्शन कराए जाते थे और उनके उज्ज्वल भविष्य तथा दीर्घायु की मंगलकामना की जाती थी-एक परंपरा जो आज भी अनेक परिवारों में जीवंत है।

मार्कण्डेश्वर महादेव से जुड़ी मान्यता इसी पवित्र भावना को और अधिक सुदृढ़ करती है। श्रद्धालुओं का अटूट विश्वास है कि भगवान शिव की असीम कृपा और मार्कण्डेय ऋषि के दिव्य आशीर्वाद से बच्चों को सुख, उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घ आयु का वरदान स्वत: प्राप्त होता है।

श्रद्धा और विश्वास का अमर प्रतीक : मार्कण्डेश्वर महादेव केवल एक प्राचीन शिवलिंग नहीं, बल्कि सनातन परंपरा, पारिवारिक मूल्यों और ईश्वर के प्रति शाश्वत विश्वास का जीवंत प्रतीक हैं। प्राचीन काल से वर्तमान तक, यह तीर्थ निरंतर श्रद्धालुओं को संबल और आशीर्वाद प्रदान करता आया है। उज्जैन आने वाले भक्तों के लिए यह स्थान आज भी अत्यंत विशेष महत्व रखता है, और बड़ी संख्या में श्रद्धालु यहां दर्शन-पूजन हेतु पहुंचते हैं, अपने साथ वही प्राचीन आस्था और नई आशाएं लेकर।

हर-हर महादेव!
यात्रा निरंतर जारी